पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा १८१-१८३
ता. ०६-०४-१९९०, प्रवचन नंबर २८०

यह श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। समयसार अर्थात् शुद्धात्मा। उसका प्रतिपादन करनेवाला जो यह समयसार (अंदर में) है - ऐसा यह शास्त्र समयसार परमागम है। एक समयसार यहाँ (अंदर में) उपादानपने है उसको बतानेवाला जो निमित्त हो उसका नाम भी समयसार। उपादान का नाम भी समयसार है - शुद्धात्मा और यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी (जो) है द्रव्यश्रुत, उसको भी समयसार कहने में आता है।

... भेदज्ञान की गाथा है। अनंत-अनंतकाल बीता उसने भेदज्ञान किया नहीं। भेदज्ञान के अभाव से आत्मा संसार में, चार गति में भटकता है, रुलता है। भेदज्ञान अर्थात् ज्ञान भिन्न है और राग भिन्न है। जाननक्रिया भी होती है आत्मा की पर्याय में और आत्मा की पर्याय में पराश्रित राग भी होता है अनंतकाल से। उसको स्वच्छ ज्ञान में राग जानने में आता भी है। तो भी, जानने में आए, मगर राग ज्ञान उपयोग में भी आता नहीं और ज्ञायकभाव तक ये पहुँचता नहीं; वह तो अपने में है। राग राग में है, ज्ञान ज्ञान में है, ज्ञायक ज्ञायक में है; ऐसी एक स्थिति है। परंतु वर्तमान ज्ञान उपयोग में जाननहार जानने में आता हुआ होने पर भी अनंतकाल से निषेध करता है कि मेरे में राग होता है, राग को मैं करता हूँ और राग को मैं जानता हूँ; ऐसे राग के साथ एकत्वबुद्धि करता था, उसका नाम मिथ्यात्व का आस्रव था। उसका नाम मिथ्यात्व का आस्रव।

भाईसाहब! हिन्दी। राग और ज्ञान हैं भिन्न-भिन्न, स्वभाव से भिन्न हैं। एक हुए नहीं, होंगे भी नहीं कभी क्योंकि ज्ञान चेतन है, राग जड़ है। जड़ और चेतन कभी तीनकाल में एक होते नहीं हैं। वो तो स्वभाव से भिन्न-भिन्न रहते हैं। तो भी इसकी दृष्टि आत्मा पर आती नहीं है, उसको ऐसी भ्रांति होती है कि मेरे में राग हो गया है। तो राग का मैं ही कर्ता हूँ और उसका फल दुख, मैं ही भोगता हूँ; ऐसे आस्रवतत्त्व, मिथ्यात्व तो अनादिकाल का था। वो भेदज्ञान से आस्रव का अभाव होकर संवर यानि शुद्धोपयोगदशा प्रगट की।

तो इधर उपयोग में उपयोग है और उपयोग में क्रोधादि नहीं हैं, बस इतने में काम हो जाता है। उपयोग यानि जाननक्रिया, उसमें जाननहार जानने में आता है। जाननहार जानने में आ रहा है। जाननेवाला है वो तो ज्ञान है और जो जानने में आता है वह ज्ञायक है। ज्ञान में जानने का धर्म है और भगवान आत्मा में प्रमेयत्व नाम का, ज्ञेयत्व नाम का गुण होने से अपने ज्ञान में जानने में आता है। इस तरह से भेद करके समझाते हैं अज्ञानी प्राणियों को। है तो अभेद, है तो अभेद, ज्ञान और ज्ञायक हैं तो अनन्य, तो भी भेद करके समझाया जाता है। तो भेद कितना किया? कि वर्तमान जो उपयोग है यानि जाननक्रिया है, यानि ज्ञप्ति-क्रिया है उसमें आत्मा है। वो जाननक्रिया में राग-द्वेष, सुख-दुःख, कुछ उसमें है ही नहीं, वो तो ज्ञान से भिन्न है। और ज्ञान और आत्मा अभिन्न हैं, इसलिए ज्ञान में आत्मा जानने

में आ रहा है। ज्ञान और राग भिन्न हैं इसलिए राग जानने में नहीं आता है। जो जिसके साथ तन्मय होता है उसको जानता है। देहादि परपदार्थों के साथ ज्ञान तन्मय तो होता नहीं है इसलिए पर को जानता नहीं है। पर को जाननेवाला इंद्रियज्ञान है। ज्ञान तो आत्मा को जानता है, इंद्रियज्ञान पर को जानता है। तो पर को इंद्रियज्ञान ने जाना तो मैं जाननहार, वो भूल गया और मैंने पर को जाना, तो मैं-पना (अपनापन) इंद्रियज्ञान में स्थाप दिया, तो इंद्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञानमय पदार्थ आत्मा उसके साथ एकत्वबुद्धि कर लेता है। एकत्व किया है। अभी विभक्त का पाठ चलता है। एकत्व तो किया है परंतु अभी विभक्त का पाठ चलता है।

पानी, जल मिट्टी के संग से पर्याय में मलिनता आयी, तो फिटकरी डालने से मलिनभाव निकल जाता है और स्वच्छ पर्याय प्रगट होती है। ऐसे आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि उपयोग में उपयोग है मगर उपयोग में रागादि नहीं हैं, क्रोधादि नहीं हैं, क्रोधादि भिन्न हैं। तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं, **ज्ञान** यानि आत्मा **जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित है वह, जाननक्रियाका ज्ञानसे** यानि आत्मा से **अभिन्नत्व होनेसे, ज्ञानमें ही है;** एक तत्त्व जानने में आता है और दूसरा तत्त्व जानता है। भेद करें तो दो तत्त्व हैं। ज्ञान है वो जानता है और ज्ञायक है वो ज्ञान में निरंतर जानने में आता है। जानने में आता है वो ज्ञेय है और जानता है वो ज्ञान है। इतना भेद समझाने के लिए है, बाकी ज्ञेय भी आत्मा और ज्ञान भी आत्मा है। ऐसा जो भेद का लक्ष छोड़कर और अभेद हो जाये तो उसको शुद्धोपयोग, संवर - धर्म की दशा प्रगट हो जाये।

ज्ञान और ज्ञायक का भेद; ज्ञान यानि जाननक्रिया, उसमें ज्ञायक है। तो ज्ञान क्रिया में रागादि, कर्म, शरीर, कुटुंब, परिवार, दुकान उसमें हैं ही नहीं; वो तो भिन्न हैं। तो ज्ञान में क्या है? कि ज्ञायक है। ज्ञान का अर्थ ज्ञाता है और ज्ञायक का नाम ज्ञेय है। ज्ञायक का नाम स्वज्ञेय, परज्ञेय की बात नहीं। परज्ञेय को जो प्रसिद्ध करे वो इंद्रियज्ञान। आत्मज्ञान पर को प्रसिद्ध नहीं करता है।

तो भगवान आत्मा तो ज्ञेय है, अभेद, सामान्य तत्त्व और जो विशेष उपयोग प्रगट होता है, उसका नाम है ज्ञान। एक का नाम ज्ञान, दूसरे का नाम ज्ञेय। और ज्ञेय और ज्ञान एक वस्तु है। भेद निकाल दें तो ये आत्मा ही है। ज्ञेय भी आत्मा और ज्ञान भी आत्मा हो गया, शुद्धोपयोगदशा। निर्विकल्पध्यान में ज्ञेय और ज्ञान का भेद दिखाई नहीं देता है। भेद होने पर भी, आहाहा! अभेद पर दृष्टि जाते ही, अभेद-ज्ञेय बन जाता है। त्रिकाल अभेद पर दृष्टि जाने से क्षणिक अभेद हो जाता है, परिणामी हो जाता है। अपरिणामी और परिणाम दो भेद निकलकर परिणामी हो जाता है। परिणामी का नाम स्वज्ञेय है। ये ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो जाता है। ध्येय तो है शुद्धात्मा, उसका ध्यान करने से ध्येय और ध्यान की हुई एकता उसका नाम ध्याता। उसका नाम है ध्याता। ध्यान, ध्येय और ध्याता एक पदार्थ है। ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता भी एक पदार्थ है।

ऐसा जाननक्रिया में अपना आत्मा जानने में आ रहा है सबको। स्वीकार नहीं करता है, वो मानता है कि पर को मैं जानता हूँ। आचार्य भगवान ने पर को जाननेवाला भिन्न बताया कि इंद्रियज्ञान पर को जानता है। ज्ञान स्व को जानता है ऐसा स्वीकार कर ले तो वो शुद्धोपयोग हो जाता है। निरंतर ज्ञान में आबाल-गोपाल सबको, भगवान आत्मा जानने में आ रहा है (समयसार, गाथा १७-१८)। वो

ज्ञायक ज्ञान में जानने में आता है क्योंकि उसमें ज्ञेयत्व है और ज्ञान में ज्ञानत्व है। तो ऐसा function (कार्य) चालू है अनादि से। आहाहा! उसका नाम सामान्य उपयोग और इतना भेद निकल जाए तो शुद्धोपयोग! ज्ञान ज्ञायक को जानता है ऐसा भेद छूट जाता है। भेद रहता नहीं है तो उसका नाम शुद्धोपयोग - संवरदशा प्रगट हो गई। उसमें आनंद आता है।

जब तक उपयोग में, सामान्य उपयोग में ज्ञायक जानने में आता है तब तक आनंद नहीं आता है। परोक्ष ज्ञान में आनंद नहीं है परंतु परोक्ष ज्ञान में कोई अपूर्व उल्लास आ जाता है। ज्ञान में जाननेवाला जानने में आता है ऐसा जो पक्ष हो - पक्ष, अनादिकाल का पक्ष है। मैं पर को जानता हूँ, पर को करता हूँ, दो पक्ष अनादिकाल के हैं। अभी कर्ताबुद्धि छोड़ दे और पर को मैं जानता हूँ वो बुद्धि छोड़ दे। मेरे ज्ञान में तो ज्ञायक जानने में आ रहा है। तो वो पहले परोक्ष में आता है ज्ञान में ज्ञायक। तो वहाँ आनंद नहीं हैं मगर पक्ष में उल्लास तो आता है। वो उल्लास भी अलग जाति का है।

एक करोड़ रुपए की लॉटरी मिले और उल्लास आ जावे ऐसा नहीं है। और ५० वर्ष में लड़का हो जावे, लड़का तो था ही नहीं, कोई लड़की-लड़का नहीं थे और ५० वर्ष में बालक हो गया तो हर्ष आती है कि नहीं? वो हर्ष अलग है, करोड़ रुपए की लॉटरी का हर्ष अलग है; मगर ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है ऐसा पक्ष आता है, वो जाति अलग है। है तो कषाय की मंदता तो भी जाति कोई अलग प्रकार की है। ओहाहा! ऐसा परोक्ष अनुभूति के बाद ये भेद निकलता है - ज्ञान-ज्ञेय का, तो अनुभव हो जाता है।

तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है। **ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित है** आत्मद्रव्य आत्मा की पर्याय में रहता है। आत्मद्रव्य आत्मा की ज्ञान की पर्याय में रहता है। राग में कहीं आत्मा नहीं, देह में आत्मा नहीं। **वह, जाननक्रियाका** देखो पहले भेद से बात बताई, अब अभेद करते हैं। भेद से समझाया जाता है मगर भेद से अनुभव नहीं होता है। व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक है मगर व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। ज्ञान में आत्मा जानने में आता है तो ये अनुसरण करने योग्य नहीं है, भेद है। इससे आगे की बात अभी कहते हैं दूसरी पंक्ति में, लाइन में।

वह, जाननक्रियाका ज्ञानसे अर्थात् आत्मा से, आत्मा और आत्मा का ज्ञान **अभिन्नत्व होनेसे,** आहाहा! अभेद कर दिया। पर्याय और द्रव्य को अभेद, समझाने के लिए भेद किया था कि जाननक्रिया में आत्मा है। राग में आत्मा नहीं है तो कर्म और शरीर और ये अरंडी पीसने की मिल उसमें आत्मा होगा? कहाँ गए जयंतिभाई? है या नहीं? गए? यहाँ बैठे हैं। गाड़ी लेकर मुझे लेने के लिए आते हैं ना। मिल में आत्मा नहीं है। मिल में तो आत्मा नहीं है, मिल मेरी है ऐसे ममत्व भाव में आत्मा नहीं है। उसमें तो आत्मा नहीं है मगर मैं पर को जानता हूँ ऐसे इंद्रियज्ञान में भी आत्मा नहीं है। सामान्य उपयोग में आत्मा है। वो सामान्य उपयोग में आत्मा है तो अभेद हो जाता है; तो अतीन्द्रियज्ञान, शुद्धोपयोग होकर संवर दशा प्रकट होती है। आहाहा!

मीठालाल पैलेस में आत्मा नहीं है। रजनी! है? नहीं है। उसकी ममता में नहीं है। आहाहा! उसको जाननेवाली इंद्रियज्ञान में आत्मा है? भोगीभाई? नहीं है। आहाहा! उससे भिन्न एक उपयोग

प्रगट होता है, जिस उपयोग इंद्रियज्ञान हुआ कि नहीं हुआ, तो उस उपयोग में आत्मा जानने में आता है और आत्मा आता है तो शुद्धोपयोग हो जाता है। हुआ कि नहीं हुआ तहाँ तो शुद्धोपयोग हो जाता है। सामान्य ज्ञान उपयोग convert (बदलकर) होकर इंद्रियज्ञानरूप हुआ कि नहीं हुआ, तहाँ तो उपयोग अंदर में चला जाता है। शुद्धोपयोग प्रकट हो जाता है।

वह, जाननक्रियाका ज्ञानसे, **ज्ञानसे** अर्थात् आत्मा से....। शक्कर और शक्कर की मिठास अभेद है, शक्कर ही है। मिठास अलग और शक्कर अलग, ऐसा है नहीं। आहाहा! सूर्य और सूर्य का प्रकाश अभेद है। ये कोई अलग चीज नहीं। **जाननक्रियाका ज्ञानसे अभिन्नत्व होनेसे, ज्ञानमें ही है;** आहाहा! पहले जाननक्रिया में आत्मा था। अभी अभेद अपेक्षा से **वह, जाननक्रियाका** आत्मा के साथ अभेद **होनेसे,** वो **ज्ञानमें ही है;** जाननक्रिया ज्ञान में ही है। जाननक्रिया में ज्ञान है, बाद में जाननक्रिया आत्मा में है। उस ज्ञान में आत्मा ही है। जाननक्रिया और आत्मा भिन्न चीज नहीं है। आहाहा!

क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित है क्रोध, क्रोध में है। जैसे ज्ञान ज्ञान में है, ऐसे क्रोध क्रोध में है। दो सत्ता अलग-अलग हैं। ऊपर आ गया, एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है क्योंकि प्रदेशभेद है। इसलिए एक सत्ता की अनुत्पत्ति नहीं। आहाहा! दोनों ही सत्ता भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए आधार-आधेय संबंध नहीं। आत्मा के आधार से क्रोध नहीं और क्रोध के आधार से आत्मा नहीं। आहाहा! क्रोध क्रोध से होता है, ज्ञान ज्ञान से होता है और ज्ञायक ज्ञायक में रहा हुआ है। उस ज्ञायक के सन्मुख होकर यदि ज्ञान जाने तो उसे धर्म की शुरुआत- संवरदशा प्रकट हो जाये। ये दो घड़ी जो सामायिक (समय-अवधि) बाँधकर पाप को रुका और पुण्य की प्रवृत्ति की हो, वो सामायिक नहीं है, प्रभु। किसी को कषाय की मंदता हो तो शुभभाव मिथ्यात्व के साथ में होता है; मिथ्यात्व के साथ का शुभभाव होता है। आहाहा! क्योंकि शुभभाव से धर्म मानते हैं न, इसलिए मिथ्यात्व साथ में रहता है। मिथ्यात्व छूटना, मोह छूटना उसमें बड़ा पुरुषार्थ चाहिए।

क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित है, क्रोध क्रोध में रहा हुआ है, ज्ञान ज्ञान में रहा हुआ है। ज्ञान क्रोध में नहीं और क्रोध ज्ञान में नहीं, ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत से भिन्नता बताते हैं। दोनों वस्तु अलग-अलग हैं। दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम या यह सुनने का जो प्रशस्त राग है, यह राग आत्मा में नहीं और आत्मा राग में नहीं। आहाहा! और राग उपयोग में नहीं और उपयोग राग में नहीं। एक पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं और पहली पर्याय में यह पर्याय नहीं तो द्रव्य तो उसमें कहाँ से आवे? आहाहा!

वह, क्रोधादिक्रियाका क्रोधादिसे अभिन्नत्व होनेके कारण, लो, जैसे जाननक्रिया को आत्मा से अभिन्न कहा, ऐसे क्रोध की क्रिया और क्रोध दो अभिन्न कह दिया है। **क्रोधादिक्रियाका क्रोधादिसे अभिन्नत्व होनेके कारण, क्रोधादिकमें ही है।** क्रोध क्रोध में है, ज्ञान ज्ञान में है। आत्मा आत्मा में है, क्रोध क्रोध में है। आहाहा!

ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है, ज्ञान का यानि आत्मा का स्वरूप जाननक्रिया है; राग की क्रिया करना वो आत्मा का धर्म नहीं है। राग को करनेवाला जुदा है और राग को जाननेवाला भी जुदा है। जाननेवाला इंद्रियज्ञान है और करनेवाला पुद्गल है। आहाहा! राग को करनेवाला बताया कि

कर्मकृत है। कर्म के संबंध से होता है इसलिए कर्म कर्ता है। आत्मा अकारक है राग का, अथवा आगे चलें तो पर्याय का कर्ता पर्याय है; आत्मा भी नहीं है और कर्म भी नहीं है। और शब्दादि को जाने, रूपादि को जाने वो इंद्रियज्ञान है। मैं उसको जानता नहीं हूँ, मैं तो जाननहार को जानता हूँ। आहाहा! जाननहार जानने में आ रहा है, उसको विश्वास नहीं आता। और ये जानने में आता है, ये जानने में आता है, इंद्रियज्ञान, अनादिकाल का प्रकट हो रहा है, अज्ञान। अर्थात् इंद्रियज्ञान से भिन्न कोई आत्मा है, अतीन्द्रियज्ञानमयी महापदार्थ अंदर विराजमान है, जिसे जानने पर अतीन्द्रियज्ञान नया प्रकट होता है। आहाहा! इंद्रियज्ञान रुक जाता है और अतीन्द्रियज्ञान प्रकट हो जाता है। बाद में इंद्रियज्ञान होता है वह ज्ञान के ज्ञेय में जाता है, कर्ता के कर्म में जाता नहीं है। आहाहा!

यह एकदम शुरूआत की बात है। किसी को लगे कि यह Metric (मेट्रिक) या LLB (एल एल बी) की बात है, ऐसा नहीं है। शुरुआत, beginning धर्म की शुरुआत संवर से होती है। वृद्धि होती है तो निर्जरा होती है। पूर्ण होता है तो मोक्ष पर्याय प्रगट होती है। संवर, निर्जरा और मोक्ष; संवर, निर्जरा शुद्ध पर्याय है, अल्प वीतरागी परिणाम है और मोक्ष पर्याय परिपूर्ण वीतरागदशा है।

ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है, इसलिये ज्ञान आधेय है, ज्ञान अर्थात् द्रव्य, वो आधेय है और जाननक्रिया आधार है। एक समय की अनित्य पर्याय, ये आधार और यह आत्मा द्रव्य अनादि-अनंत आधेय। ज्ञान की पर्याय एक समय की, उपयोग, उसके आधार से आत्मा है; ऐसा कहकर क्रोध के आधार से आत्मा नहीं इतना बताना है। एक पर्याय में आत्मा आ जाता है ऐसा बताना नहीं है। परंतु आत्मा किसमें जानने में आता है? कि ज्ञान में। भैया! आत्मा किसमें जानने में आता है? कि ज्ञान में। तो ज्ञान की पर्याय तो अनित्य है। अनित्य में नित्य है। अनित्य में, - यानि अनित्य पर्याय में जानने में आया - इस अपेक्षा से अनित्य में नित्य है। मगर क्रोध अनित्य है, उसमें तो (आत्मा) है ही नहीं। इतना विवेक कराना है, ऐसा सर्वथा नहीं मान लेना। क्रोध में नहीं है और उपयोग में है, इतना बताने के लिए कहा। आहाहा! बाकी तो आत्मा आत्मा में है, पर्याय में है नहीं। पर्याय छूती नहीं है उसको। आहाहा! **ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवु तेह; त्यां-त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह** (आत्मसिद्धिशास्त्र गाथा ८)।

ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है, इसलिये ज्ञान आधेय है और जाननक्रिया आधार है। आहाहा! आधार है। अब देखो आगे अभेद करते हैं। **जाननक्रिया आधार होनेसे** पर्याय में द्रव्य जानने में आता है इसलिए पर्याय के आधार से द्रव्य रहा हुआ है। तो **जाननक्रिया आधार होनेसे** ऐसा कहा कि ज्ञान ही आधार है, आत्मा ही आधार है। पहले भेद से पर्याय को आधार कहा, अभेद से द्रव्य को आधार कहा। आधार समझे? आधार क्या है? कि ये (हाथ पर) पदार्थ है, ये हाथ के आधार से है। तो हाथ है ना, हाथ, वो है आधार और वो (पदार्थ) है आधेय। हाथ में ये है। हाथ के आधार से ये द्रव्य रहता है, दृष्टांत। यह (पदार्थ) तो इसको छूता नहीं। आधार-आधेय संबंध नहीं है, वो तो दृष्टांत (है)। आहाहा! ऐसा नहीं लेना कि हाथ के आधार से (पदार्थ) रहा, ऐसा नहीं है। उसके (पदार्थ के) अंदर आधार-आधेय नाम की शक्ति है। अपने आधार से रहता है। हाथ को छूता ही नहीं है वो तो आधार कहाँ से बन जाये? हाथ को उसने स्पर्श नहीं किया। आहाहा! संयोग से देखनेवाले को ये आधार-

आधेय संबंध लगता है और दो द्रव्यों को भिन्न देखनेवाले को आधार-आधेय संबंध - दिखता नहीं है। इसका (पदार्थ का) आधार-आधेय इसमें (पदार्थ में) है, हाथ का आधार-आधेय इसमें (हाथ में) है। हाथ के आधार से ये (पदार्थ) नहीं है और इसके (पदार्थ के) आधार से ये (हाथ) नहीं है। मगर इधर ज्ञान की पर्याय के आधार से जो द्रव्य कहा था, अभी अभेद करके आत्मा के ही आधार से सब हैं। उपयोग के आधार से आत्मा कहा था, अभी आत्मा के आधार से उपयोग है। अरे! उपयोग क्या? आत्मा आत्मा के आधार है। बस! हो गया। आहाहा! भेद निकाल दिया।

जाननक्रिया आधार होनेसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान ही आधार है, आत्मा ही आधार है। आत्मा ही आत्मा का आधार है। आत्मा के आधार से ज्ञान है, ऐसा भी नहीं। अभेद विवक्षा में तो आत्मा के आधार से ही आत्मा रहा हुआ है, यह भी भेद है। आत्मा तो आत्मा है, बस! वहाँ निर्विकल्पध्यान आ जाता है। समझाने के लिए आधार-आधेय का भेद करना पड़ता है। वस्तु में आधार जुदी वस्तु और आधेय जुदी (वस्तु), दो धर्म-भेद हैं परंतु वस्तु-भेद नहीं है। धर्म का भेद है, आधार और आधेय एक पदार्थ के दो धर्म हैं। धर्म की विवक्षा से भेद है, वस्तु से देखो तो एक है। किसको कहूँ मैं आधार और किसको कहूँ मैं आधेय? आहाहा!

जाननक्रिया आधार होनेसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान ही आधार है, क्योंकि जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं हैं। देखो! **जाननक्रिया** जो जाननक्रिया आत्मा को जानती है, अतीन्द्रियज्ञान, वो आत्मा से भिन्न नहीं है, अभिन्न है। अभेदनय से एक है, अभेदनय से एक है। भेदनय से दो हैं, अभेदनय से एक है। दोनों ही विकल्प नहीं हैं; जो है सो है। बस! वहाँ सब विकल्प छूट जाते हैं।

इस तरह से **यह सिद्ध हुआ कि** ऐसा सिद्ध **हुआ कि ज्ञान ज्ञान में है**। आहाहा! ज्ञान ज्ञान में है यानि आत्मा आत्मा में है। पहले आत्मा उपयोग में था, अभी आत्मा आत्मा में ही है। उपयोग और आत्मा का भेद नहीं है। भेद होने पर भी भेद दिखाई देता नहीं है। आहाहा! **इसीप्रकार क्रोध क्रोधमें ही है।** आहाहा! क्रोध क्रोध में है ज्ञान ज्ञान में है। दोनों भिन्न हो गए, भेदज्ञान हो गया। क्रोध क्रोध में है और ज्ञान ज्ञान में है। **और** उपरांत **क्रोधादिकमें,** यानि भावकर्म में, **कर्ममें**, ज्ञानावर्णादि आठ कर्म में **या नोकर्ममें**, शरीर में **ज्ञान नहीं है** आहाहा! दया, दान करुणा, कोमलता के परिणाम में आत्मा नहीं है। ये आत्मा का कर्तव्य नहीं है। आहाहा! सचमुच तो आत्मा का ज्ञेय नहीं है। वह तो इंद्रियज्ञान में ... ज्ञेय है; मेरा ज्ञेय ये नहीं, मेरा ज्ञेय तो मेरे पास है। आहाहा!

और क्रोधादिकमें, कर्ममें या नोकर्ममें ज्ञान नहीं है अचेतन जड़ है। भावकर्म भी अचेतन, पाँच महाव्रत के परिणाम में आत्मा नहीं है। पाँच महाव्रत के परिणाम अचेतन-जड़ हैं भावकर्म में गए। औदयिक भाव है। वो संवरतत्त्व नहीं है, वो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! वो बंध का कारण है। तो करना कि नहीं करना? करने नहीं करने की बात ही नहीं है। कालक्रम में आता है, ज्ञानी उसको जानता है। बस! करता नहीं है ज्ञानी और आए बिना भी रहता नहीं है और ज्ञान में ज्ञेय भी हो जाता है। आहाहा! वो व्यवहारज्ञेय होता है, निश्चयज्ञेय तो अपना आत्मा है अंदर। मगर शुद्धोपयोग नहीं है इसलिए कहना पड़ता है कि ज्ञान का ज्ञेय है। बहुत अलौकिक बात है, समयसार की! आहाहा!

पढ़ने में CA (सीए) का पढ़े दस-दस, बीस-बीस साल तक पढ़े। पचास वर्ष (की आयु में)

परीक्षा देवे, छोड़े नहीं तब तक थके नहीं है पढ़ने में। ऐसे case (मामला) बंबई में बहुत हैं। परीक्षा देते ही रहते हैं, देते ही रहते हैं। वहाँ उनको time (समय) मिलता है, इधर time (समय) नहीं मिलता है। छह महीने का time (समय) है, ज्यादा तो time (समय) नहीं है। आचार्य भगवान ने कहा कि अनुभव तो अंतर्मुहूर्त में होता है। कोई प्रमादी हो तो ज्यादा से ज्यादा आत्मा का निर्णय और अनुभव छह महीने में हो जाता है। आहाहा! निर्णय भी छह महीने और अनुभव भी। निर्णय के बाद ज्यादा time (समय) नहीं लगता है। मगर सब सुनता है, मानता है लेकिन निर्णय नहीं करता है। निर्णय की कीमत है। निर्णय अपने से होता है। निर्णय पर से नहीं होता है। अपना निर्णय अपने से होता है, मैं कौन हूँ? आहाहा! मेरे में क्या है? मैं करनेवाला हूँ कि जाननेवाला हूँ? मैं पर को जाननेवाला हूँ कि स्व को जाननेवाला हूँ? ऐसा निर्णय करना चाहिए। निर्णय अपने से होता है। निर्णय कोई करा देवे ऐसी स्थिति नहीं है। सत्-समागम बहुत किया। श्रीमद् राजचंद्रजी ने सत्-समागम पर बहुत भार - वजन दिया है क्योंकि उस समय कुशील का संग सब करते थे। उस समय ऐसा था, सौ वर्ष पहले ऐसा समय था। तो सत्-समागम करो। आहाहा! सत्-समागम जो परपदार्थ यानि ज्ञानी का संग, ज्ञानी का संग, आहाहा! अनंत बार किया। मगर एक सत्संग इधर (अंदर) आत्मा का संग, असंगी का संग नहीं किया। असंगी का संग कर लो! आहाहा!

सत्संग के दो प्रकार हैं, व्यवहार सत्संग और निश्चय सत्संग। निश्चय सत्संग आत्मा के अंदर होगा। वो बात निमित्ताधीन दृष्टिवालों को खटकती है कि पर के सत्-समागम ऊपर वजन नहीं देते हैं। वजन देने जैसी चीज नहीं है वो निमित्त का पक्ष है। आहाहा! सूक्ष्म मिथ्यात्व का शल्य है। तो क्या ज्ञानी का समागम नहीं करना? करने नहीं करने की बात नहीं है। जानने की बात है। ये समागम नहीं किया क्या? अनंतकाल से समागम तो करते थे। हें? तीर्थंकर की सभा में गए कि नहीं? अनंत बार गए। तो उत्कृष्ट में उत्कृष्ट समागम तो था कि नहीं? हें? तो जब सत्-समागम कार्य की उत्पत्ति में नियमरूप कारण बनता होगा, तो-तो (कार्य) बनना चाहिए। निमित्तकारण तो था उत्कृष्ट! कार्य की उत्पत्ति उपादान से होती है, तीनकाल में निमित्त से होती नहीं। निमित्त हाज़िर हो कि न हो कार्य तो उपादान से होता है, निमित्त से होता नहीं है। आहाहा!

ऐसा श्लोक आया कि पूरा ही व्यवहार छुड़ाते हो, तो मुनियों का क्या होगा? निराश्रित हो जायेंगे। कि नहीं! मुनियों को आत्मा की शरण है। आहाहा! पर अनंत-अनंतकाल से यह पक्ष पड़ गया है जीवों को, निमित्ताधीन दृष्टि। आहाहा! निमित्त हो तो कुछ अच्छा काम होवे। निमित्त अकिंचित्कर है। आहाहा! आत्मा की पर्याय को फेरने की ताकत निमित्त की नहीं। यहाँ फिरे तब निमित्त को उपकार कहने में आता है कि आपके उपकार से हमें सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! ऐसे उपकार के शब्द भी आते हैं। उपकार ઓળવે (भूले) नहीं। सज्जन हैं, वो उपकार को भूलते नहीं। आहाहा!

मगर निमित्ताधीन दृष्टि तो अनादिकाल से है। तो ज्ञान की उत्पत्ति निमित्तकारण से नहीं होती है। परलक्ष अभावात् चंचलता रहितम् अचलम ज्ञानम् (चेतनत्वं ... **अचलं परलक्ष्येऽभावाच्चंचलता-रहितं अचलम्** - परम अध्यात्म तरंगिणी, समयसार कलश ४२ की टीका)। ज्ञान की उत्पत्ति आत्मा के आश्रय से होती है; शास्त्र के आश्रय से, शास्त्र के लक्ष से ज्ञान की उत्पत्ति होती नहीं है। आहाहा! कि

निश्चय की बात यानि वास्तविक बात है। शास्त्र तो सब पढ़ते हैं समयसार, तो सबको सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। द्रव्यलिंगी मुनि भी शास्त्र पढ़ते हैं तो आत्मज्ञान नहीं हुआ। आहाहा! आत्मा से आत्मा का ज्ञान होता है। परज्ञेय से आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञेय में से ज्ञान नहीं आता है और ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता है। ज्ञायक से ज्ञान होता है और ज्ञायक में से ज्ञान आता है। आता है ज्ञायक में जाता भी है ज्ञायक में। ज्ञान आता भी अंदर में से है और जाता भी अंदर है। राग बाहर रह जाता है, राग अंदर नहीं जाता है। आहाहा!

और क्रोधादिकमें, कर्ममें या नोकर्ममें ज्ञान अर्थात् आत्मा **नहीं है**, शुद्धात्मा वह राग की क्रिया में नहीं है, जड़-कर्म में नहीं है, शरीर में नहीं है। **तथा ज्ञानमें क्रोधादिक, कर्म या नोकर्म नहीं हैं**, आहाहा! उसमें (क्रोधादि में) ज्ञान नहीं है और ज्ञान में क्रोधादि नहीं हैं। ज्ञान में यानि आत्मा में, शुद्धात्मा में, ज्ञायक आत्मा में क्रोधादि नहीं है। क्रोधादि एक समय की बाहर की पर्याय में हैं। पर्याय में क्रोध है और द्रव्य में क्रोध नहीं है। क्रोध क्रोध में है मगर मेरे में नहीं है। उसका नाम अस्ति-नास्ति अनेकांत है। आहाहा! पर्याय की कौन ना बोलता है? पर्याय तो है पर्याय में। मगर क्रोध पर्याय में होता है; विभाव स्वभाव में (नहीं हैं)। स्वभाव और विभाव अलग-अलग हैं दो चीज, दो की सत्ता न्यारी है। अशुद्ध उपादान। आहाहा!

उनमें एक सत्ताकी अनुपपत्ति है दूसरी पंक्ति में, टीका की दूसरी पंक्ति, है कि नहीं? **उनमें एक सत्ताकी अनुपपत्ति है** कि क्रोध और आत्मा एक है, ऐसा है नहीं। दोनों की सत्ता न्यारी-न्यारी हैं। एक में दूसरे का अभाव है। आत्मा में राग का (अभाव है)। ये अँगुली दो हैं ना? तो दो कब सिद्ध हो? एक में दूसरे की नास्ति तब दो सिद्ध हों। कि (निज) भगवान आत्मा की सिद्धि कब होती है? कि (निज) आत्मा आत्मारूप है और देहरूप नहीं है, (निज) आत्मा आत्मारूप है और जड़ कर्मरूप नहीं है, (निज) आत्मा आत्मारूप है और रागरूप नहीं है - ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत, ये भेदज्ञान परक अनेकांत अमृत है। भेदज्ञान परक अनेकांत अमृत है। अनेकांत यानि अनंत धर्म को जाने वो अनेकांत, वो तो अनेकांत का फल है। वो तो ज्ञान है, वो तो प्रमाणज्ञान है। प्रमाणज्ञान नयपूर्वक होता है। आहाहा!

देखो! अनेकांत के तीन प्रकार हैं। अनेकांत के तीन प्रकार हैं। अनेकांत दो प्रकार है, वो भेदज्ञानपूर्वक है और तीसरा अनेकांत भेदज्ञान का फल है। तो पहले दो अनेकांत की बात मैं कहता हूँ, कि स्वचतुष्टय में परचतुष्टय की नास्ति है। यानि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इधर (अंदर) हैं, प्रमाण का द्रव्य, तो प्रमाण के द्रव्य में परद्रव्य की नास्ति है। लोकालोक मेरे में हैं ही नहीं। लोकालोक मेरे में नहीं है, ऐसा मैं द्रव्य-गुण-पर्यायवाला। **गुणपर्ययवत् द्रव्यं** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३८), **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३०) वो स्वचतुष्टय में परचतुष्टय की नास्ति है, ऐसा **अस्ति-नास्ति अनेकांत वो भेदज्ञान परक** (सिद्धांतों की सरवाणी बोल ६१) हो गया। पर से भिन्न पड़ गया आत्मा! कुटुंब से, पैसे से, जवाहरात से भिन्न पड़ गया वो मेरे में नहीं हैं। आहाहा! तो मेरे में क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय। सब ले लो अंदर में, कोई परेशानी नहीं है। पर से भिन्न पड़ गया। एक अनेकांत ये है। अनेकांत भेदज्ञान परक है। अनेकांत खिचड़ी (मिलावट) नहीं करता है ऐसा भी है ऐसा

भी है, ऐसा अनेकांत नहीं है। आहाहा! ऐसा है। चलती है बहुत बात।

एक दफे मैं गया साहूजी के पास। समझे? दो-चार दिन गया था, कुछ काम था। तो मैं सोनगढ़वाला हूँ ऐसा तो वो जानते थे। वो तो जाने न? हें? मेरे को (कहा) भैया! जैनधर्म अनेकांत है। बराबर है साहब! मगर अनेकांत का स्वरूप क्या? मैंने बोला ही नहीं कुछ, मैंने तो सुन लिया। मैंने तो सुन लिया। उसमें क्या? चर्चा का विषय नहीं है वो। आहाहा! अनेकांत झंडा हमारा, अनेकांतवाद है, स्याद्वाद है हमारा, trademark (खास निशान) है। स्याद्वाद आत्मा में है कि ज्ञान की, अनुभव ज्ञान की पर्याय में रहता है? आहाहा! शुद्धात्मा में स्याद्वाद का अभाव है और आत्मज्ञान में स्याद्वाद का सद्भाव है। आत्मज्ञान में है, शास्त्रज्ञान में स्याद्वाद नहीं है। आहाहा!

तो पहले दो (द्रव्य) - स्वद्रव्य से परद्रव्य की भिन्नता स्वचतुष्टय। समझ में आया? आया ना यहाँ पर। देह से मेरा आत्मा भिन्न है और मेरे परिणाम से आत्मा अभिन्न है। भले राग ले लो, उपयोग ले लो, सब ले लो खिचड़ी, कोई बात नहीं है। समझे? दो द्रव्य की भिन्नता में सब ले लेना। मिथ्यात्व की पर्याय आत्मा में है, पर में नहीं है, पर से नहीं है। समझे? वो नवतत्त्व में आ गया। आहाहा! प्रमाण में आ गया, द्रव्य-गुण-पर्याय विकार-अविकार सब। बाद में दूसरा अनेकांत है। उसको प्रमाण सप्तभंगी कहा जाता है, शास्त्र भाषा।

अभी नय सप्तभंगी दूसरी है कि ज्ञायक में प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। चौदह गुणस्थान की आत्मा में नास्ति है। सम्यग्दर्शन का आत्मा में अभाव है। मोक्ष का आत्मा में अभाव है। द्रव्य में पर्याय की नास्ति है, ऐसी मेरी अस्ति है। उसका अनुभव करने से आत्मज्ञान होता है।

तो आत्मज्ञान में, अभी तीसरे नंबर आया, अनंत धर्मात्माक पूरा आत्मा जानने में आ गया। उसका नाम अनेकांत प्रमाण है, अनेकांत प्रमाणज्ञान हो गया। उसका तो फल है, भेदज्ञान का फल अनेकांत है। आहाहा!

अनेकांत के तीन प्रकार बताए। अनेकांत कि आत्मा के आश्रय से धर्म होता है और व्यवहार रत्नत्रय से धर्म होता है ऐसा अनेकांत नहीं है! आत्मा से आत्मा का ज्ञान होता है और शास्त्र से भी आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा अनेकांत नहीं है। आहाहा! वो तो अज्ञान है। आत्मा से आत्मज्ञान होता है और शास्त्र से नहीं होता है, उसका नाम अस्ति-नास्ति अनेकांत है। तो शास्त्र का लक्ष छूटकर अंदर लक्ष आ जाता है। आहाहा! शास्त्र होता है पहले, शास्त्र ने बताया कि मेरा लक्ष छोड़ दे। **पर लक्ष अभावात्**, पर के लक्ष से ज्ञान तीनकाल में प्रगट नहीं होता है, अज्ञान प्रगट होता है, अज्ञान। आहाहा! सतीश हाँ पाड़ता है। बुद्धिगम्य चीज है, जैनदर्शन है न, ये बुद्धिगम्य है। ऐसा अंधश्रद्धा का विषय नहीं है।

आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि मैं एकत्व-विभक्त आत्मा की बात कहूँगा मगर तू अनुभव से प्रमाण करना। हमने तो अनुभव से प्रमाण कर लिया है, तू भी अनुभव से प्रमाण कर लेना। सफेद है, वो सब शक्कर नहीं होती है। सफेद सो शक्कर, सफेद सो शक्कर। तो शक्कर भी सफेद है और फिटकरी भी सफेद। ऐसा नहीं है, अनुभव से प्रमाण कर। तेरे पास फिटकरी भी आयी और शक्कर भी आयी, दोनों को जीभ पर लगाना। लगा दे। फिटकरी लगाई – 'अह!' (नहीं) नहीं! शक्कर (लगाई),

हाँ! यह शक्कर है। अनुभव से प्रमाण होता है। सब बात अनुभव से प्रमाण होती है। आहाहा!

मगर सारा समय मिलता है उसको, व्यापार-धंधे का चौबीस घंटे, गधा-मजूरी। बंबई में तो सुबह नौ बजे जाये। आहाहा! बाबूभाई! बंबई में तो सुबह नौ बजे जाते हैं, रात को नौ-दस बजे आवे। आहाहा! बच्चे सुबह में उठे न हों और ये चला जाये और रात को आए तो बच्चे सो गए हों; तो दस साल तक उसके पिता को पहचाने नहीं वो बच्चा। यह तो स्थिति है मुंबई की। आहाहा! मगर इसके (स्वाध्याय के) लिए उसको time (समय) निकालना चाहिए। थोड़ा time (समय) तो घंटे, दो घंटे, चार घंटे तो निकालना चाहिए। आहाहा! कम से कम एक घंटा तो निकालना चाहिए स्वाध्याय, चिंतवन, मनन। सम विचारवाले जीव हों उनके साथ चर्चा करे। आहाहा! और साहित्य तो कितना बाहर आ गया है। ११ भाग में तो प्रवचन रत्नाकर बाहर आ गए हैं। नौ हज़ार तो टेप हैं। आहाहा! साधन तो बहुत हैं बाहर का।

एक बार मैं कलकत्ता गया था वाँचन के लिए। शाम को एक दूसरी जगह गया भोजन करने। अपने साधर्मियों के घर भोजन के लिए जाना हो न तो भोजन में थोड़ा समय था। तो मैंने कहा जरा समयसार दो ना। समझ गए? तो समयसार तो दिया उन्होंने मगर पन्ने सब चिपके हुये। उसने कभी पढ़ा ही नहीं किसी दिन। मैंने कहा ये क्या, आपने? समयसार - पन्ने तो चिपके हुये हैं, पढ़ते नहीं? भाई साहब! पढ़ा नहीं है। ऐसी तो स्थिति है। बोलो! उनको time (समय) नहीं है। आहाहा! जब मृत्यु का time आयेगा, तब time माँगेगा, तो यमराज तेरे को time नहीं देगा। यह तो दृष्टांत है, हो! कोई यम-वम नहीं है। आयुष्य पूरा होने का (समय) होगा, तब समय माँगेगा तो time नहीं मिलेगा। अभी समय है, side business (दूसरा व्यवसाय) तो शुरू करो। side business समझे? side business यानि थोड़ा time (समय) निकाल करके बाकी का व्यापार-रोजगार की प्रवृत्ति भले हो, परंतु side business तो शुरू करो। बाद में main (मुख्य) business (व्यापार) हो जाता है। side business में अगर अंदर मजा आती है तो main business हो जाता है। लड़के को कहता है कि तुम चलाओ दुकान। अच्छा! सतीश तुम दुकान चलाओ, रजनी दुकान चलाओ। भोगीभाई हैं, ध्यान रखेंगे मैं छोड़ता हूँ। तो लड़के भी खुश होते हैं। भले धर्म ध्यान करे, मुझे बाधा डालते थे ऐसा नहीं! ये तो थोड़े, ये कुटुंब की बात नहीं है, ये तो दूसरों को ऐसा - अच्छा हुआ बाधा डालना मिट गया! समझ गए? आहाहा! पुत्र का फर्ज़ है कि माता-पिता को धर्म कि और झुकावे। पुत्र का फ़र्ज है माता-पिता को धर्म कि और झुकावे। आहाहा! आपने बहुत किया अभी निवृत्ति लेकर धर्मध्यान करो। आहाहा! मगर इसको, आहाहा! इसको विश्वास नहीं है कि मेरा सुख मेरे में है और इधर से आएगा - उसको विश्वास नहीं है। सुख बाहर में से ढूँढता है। सुख बाहर में से ढूँढता है, परंतु सुख आनेवाला नहीं है, मृगजल है। आहाहा! तृषा मिटती नहीं उसमें, मर जाये।

ज्ञानमें क्रोधादिक, कर्म या नोकर्म नहीं हैं क्योंकि उनके देखो! **उनके** न्याय देते हैं। **परस्पर अत्यन्त** सर्वथा **स्वरूप-विपरीतता होनेसे** ज्ञान और क्रोध अत्यंत भिन्न-भिन्न हैं क्योंकि दोनों की स्वरूप विपरीतता है, एक चेतन और दूसरा जड़। आहाहा! स्वभाव से भिन्न हैं, स्वरूप विपरीतता है। दोनों का विपरीत स्वरूप हैं।

अर्थात् ज्ञानका स्वरूप और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्मका स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होनेसे, एक जड़ और एक चेतन है। आत्मा जाननेवाला चेतन है और रागादि जानने में आते हैं वे अचेतन हैं। स्वरूप की विपरीतता है इसलिए दोनों की सत्ता न्यारी-न्यारी है। आहाहा! आत्मा की सत्ता में ज्ञान होता है और पराश्रित पर्याय की सत्ता में राग होता है। आत्मा की सत्ता में ज्ञान होता है और पराश्रित पर्याय उसकी सत्ता में राग होता है। आहाहा!

अत्यन्त विरुद्ध होनेसे उनके परमार्थभूत आधारआधेयसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! आत्मा के आधार से राग नहीं है। राग अद्धर से होता है। राग होता है न, अद्धर से होता है। आत्मा कर्ता होता है इसलिए राग होता है ऐसा नहीं है। क्या कहा? सूक्ष्म बात है। आत्मा जो करे तो राग हो ऐसा नहीं है, राग स्वयं होता है। अज्ञानी का आत्मा भी कर्ता नहीं है क्योंकि राग को करने का आत्मा में स्वभाव ही नहीं है। आत्मा में कोई गुण ही नहीं है कि राग की रचना करे। हाँ! इतना सही है कि राग स्वयं उत्पन्न होता है, राग के ऊपर दृष्टि है तो अज्ञानी मान लेता है कि राग को मैं करनेवाला हूँ। तो कर्ताबुद्धि होती है तो अज्ञान होता है।

एक दफे शिविर में कहा, राजकोट के शिविर में पंडित जी थे हुकुमचंद जी, पास में। बात निकली जैसे आज निकली ऐसी, अज्ञानी का आत्मा राग का कर्ता नहीं है। राग होता है तब मैं करनेवाला होता हूँ उसका नाम अज्ञान है। अज्ञानी है इसलिए राग करता है, ऐसा नहीं है। राग होता है स्वयं, मानता है कि मैंने किया तो अज्ञानी बन जाता है। राग के करने से अज्ञानी बना ऐसा नहीं है। कर्ता ही नहीं है आत्मा। समझ में आया कुछ? राग स्वयं होता है, होने योग्य होता है। अपने स्वकाल में, स्वभाव में प्रगट होता है। जन्मक्षण है उसका। इधर ज्ञान प्रगट होता है, ज्ञान में वो ज्ञेय जानने में आता है, तो मैं जाननहार हूँ वो भूल गया; मैं रागी तो अज्ञानी बन जाता है। अज्ञानी है इसलिए राग का कर्ता है, ऐसा नहीं है। वो उपदेश कथन में ऐसा आता है कि अज्ञान है तब तक राग का कर्ता है। मालूम है सब हमको शास्त्र की भाषा। शास्त्र की भाषा है; आहाहा! आत्मा की भाषा जुदी है। आहाहा! समझाने के लिए क्या करें अज्ञानी राग का कर्ता है। नहीं! राग का कर्ता मानता है तो अज्ञानी बन जाता है। तो पंडित जी खुश हो गए। आहाहा! हुकुमचंदजी (ने कहा) वो बात आप की बराबर है। पंडित जी ने स्वीकार कर लिया। हो! बराबर (सही) है आपकी बात।

आत्मा राग का कर्ता है तो-तो नित्य कर्तापना चालू रहे, तो छूटे ही नहीं। राग राग से होता है दृष्टि राग पर है, तो मैंने राग किया तो अज्ञानी बन जाता है। राग उत्पन्न होता है इसलिए अज्ञानी नहीं है। राग तो, राग की उत्पत्ति तो साधक को भी होती है कि नहीं? पाँच महाव्रत का परिणाम? तो पाँच महाव्रत के परिणाम की उत्पत्ति अज्ञान नहीं है। उसको मैं करता हूँ, तो ज्ञान का अज्ञान हो जाता है और मैं जानता हूँ तो ज्ञान रह जाता है। आहाहा!

क्योंकि उनके... (अर्थात् ज्ञानका स्वरूप और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्मका स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होनेसे) एक जड़ और (एक) चेतन, चेतन, चेतना। चेतन भी राग को नहीं करे और चेतना भी राग को नहीं करती है। चेतन तो द्रव्य है और चेतना तो ज्ञान की पर्याय है। ज्ञान की पर्याय भी राग को नहीं करे, आहाहा! क्योंकि ज्ञान की पर्याय में राग नहीं है इसलिए कर्ता नहीं है। ज्ञान की

पर्याय में राग आ जावे तो-तो करे। ज्ञान की पर्याय में ही राग नहीं है तो ज्ञायक में तो राग कहाँ से आवे? आहाहा! राग को आत्मा में स्थाप दिया है। आहाहा! आत्मा में तो नहीं है मगर जो सामान्य उपयोग प्रगट होता है, उसमें भी राग नहीं है। आहाहा! सचमुच तो उपयोग में आत्मा जानने में आता है, राग जानने में आता नहीं है। मगर मैं राग को जानता हूँ तो अज्ञानी बन जाता है। राग को करता हूँ तो भी अज्ञानी और राग जानने में आया तो भी अज्ञानी है। आहाहा! ज्ञानी राग को नहीं जानता है, राग संबंधी अपने ज्ञान को जानता है। राग संबंधी अपने ज्ञान को जानता है कि जिस ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, आहाहा! ऐसा ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है।

अत्यंत विरुद्ध होनेसे उनके परमार्थभूत आधारआधेयसम्बन्ध नहीं है। आत्मा के आधार से राग नहीं होता है, अद्धर से होता है। आधार-आधेय संबंध पर्याय के साथ है; षट्कारक कर्ता, कर्म, करण, करण यानि साधन, आहाहा! आधार है उसमें। आधार नाम का धर्म है पर्याय में। पर्याय में आधार नाम का धर्म है, कर्ता नाम का धर्म, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण यानि आधार। पर्याय के आधार से राग होता है, द्रव्य के आधार से राग होता नहीं है। आहाहा! ये उदयभाव पर्याय के साथ तन्मय है; ज्ञायक के साथ उदयभाव तन्मय नहीं रहता है। ज्ञायक के साथ तो पारिणामिकभाव तन्मय है और पर्याय का उदयभाव पर्याय के साथ तन्मय है। तन्मय एक समय जितना है। तो उदयभाव कहाँ तन्मय है? पर्याय में तन्मय है। द्रव्य में आता ही नहीं है राग आहाहा! द्रव्य उसको छूता ही नहीं है। एक जड़ और एक चेतन, परमार्थ का आधार-आधेय संबंध नहीं है - ऐसा पाठ है। उसमें लिखा है, उसका अर्थ चलता है। **परमार्थभूत आधारआधेयसम्बन्ध नहीं है।**

ॐ